रचनाओं को प्रामाणिक माना है- सूर-सारावली, साहित्यलहरी, सूरसागर, सूरपचीसी, सेवाफल और सूरदास के विनयादि के स्फुट पद। परन्तु डॉ० दीनदयाल गुप्त एवं अन्य कुछ आधुनिक समीक्षक सूर सारावली, साहित्य लहरी और सूरसागर नामक केवल तीन कृतियों को ही सूरदास जी रचना मानते हैं। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपने शोध प्रबन्ध 'सूरदास' में साहित्यलहरी और सूरसारावली को भी सूरसागर के रचयिता सूर की रचना नहीं माना उन्होंने अपने प्रमाण प्रस्तुत कर सूरसारावली और साहित्य लहरी को अप्रमाणिक कृति सिद्ध कर दिया है।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो एकमात्र सूरसागर ही उनकी अक्षय कीर्ति का आधार है और सूर की सारी रचनाओं को यह समुच्चय वास्तव में एक विशाल सागर है जिसमे सूर ने अपने विचारों और अपनी भावनाओं के मोती भर दिये हैं। इसी सागर में जाकर सूर के जब विचार और भावनायें गिरी हैं और इसी में उन्होंने शुद्ध द्वैतवादी दर्शन का सार और पुष्टिमार्गी भक्ति का निचोड़ भर दिया है। वात्सल्य में संख्य और कांता भक्ति तथा सेवा का जो सामंजस्य इस साहित्यसार में एकत्र हुआ है, वह अन्यत्र नहीं।"

यहाँ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि सूरसागर के पदों की संख्या कितनी है क्योंकि किवदंतियों के आधार पर पदों की संख्या सवा लाख तक मानी जाती हैं। यों तो चौरासी वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि "सूरदास जी ने सहस्राधिक पद किये हैं ताको सागर कहिये सो सब जगत में प्रसिद्ध भये" पर सूर के छः हजार से अधिक पद नहीं मिलते। अतः डॉ० श्यामसुन्दर दास तो सूर के केवल छः हजार पद ही मानते हैं, तथा द्वारकादास परीख व प्रभुदयाल मीतल उनकी संख्या 98,350 मानते हैं, लेकिन डॉ० हरवंशलाल शर्मा का विचार है। कि "सूरदास जैसे सिद्ध कवि के लिये अपने भक्ति भाव भरित दीर्घ जीवन काल में सवा लाख पदों की रचना करना कोई असम्भव बात नहीं थी।

चूंकि सूरसागर और श्रीमद्भागवत दोनों में ही बारह स्कन्ध हैं तथा प्रत्येक स्कन्ध की कथाओं में भी समानता है और प्रायः सूरसागर की अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों में कथा श्रीमद्भागवत की ही भाँति स्कन्धों में विभाजित है। अतः कुछ विचारक सूरसागर को श्रीमद्भागवत का अनुवाद मात्र मानते हैं। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने तो सूरसागर को श्रीमद्भागवत की काव्यमय छाया ही माना है।, लेकिन सूरसागर भागवत अनुवाद मात्र नहीं है और उसमें कवि की मौलिक कल्पना ही दीख पड़ती है, तथा विचारपूर्वक देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने भागवत के प्रत्येक स्कन्ध से बहुत ही कम सामग्री ग्रहण की है।

सूर-काव्य का अनुशीलन करने पर सहज स्पष्ट हो जाता है कि सूर पहले भक्त हैं और बाद में कवि। सामान्यतया सूर की भक्ति अनन्य कोटि की है और उन्होंने अपने आराध्य कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति भावना ही प्रकट की है। साथ ही सूर की भक्ति भावना पर वल्लभाचार्य के पुष्टिमर्गीय सिद्धान्तों का भी प्रभाव पड़ा है और जहाँ एक ओर उन्होंने बहुत अधिक संख्या में विनय सम्बन्धी पदों की रचना की है, वहाँ दूसरी ओर हरिलीला के पद भी प्रचुर परिमाण में लिखे हैं।

चूंकि आचार्य महाप्रभु को दैत्य भक्ति प्रिय नहीं थी, अतः सूर ने सख्य भक्ति को प्रधानता दी है और डॉ० हरवंशलाल शर्मा के शब्दों में "सूरदास के सखा भाव में यह विशेषता है कि उसमें एक ओर तो मनोवैज्ञानिक रूप से मानवीय सम्बन्धों का निर्वाह किया गया है और भावात्मकता की अनुभूति भी की गई है। कृष्ण की ओर से सखाओं के प्रति प्रकटित आत्मीयता और घनिष्ठता स्वाभाविक है, जिसमें स्नेह की मधुरिमा बाल सुलभ-चापल्य

Scanned with CamScanner

प्रेरित शुद्ध विवाद के बाद और भी अधिक अस्वाद्य हो उठती है तथा जिसमें क्रीड़ाओं की सहजता के साथ कर्तव्य की भावना का गौरव भी स्पष्ट रूप से झलक मारता दिखाई देता है। सूर का सख्य वर्णन विश्वसाहित्य मों बेजोड़ है।" साख्य भाव की भक्ति के साथ ही वात्सल्य भक्ति भी सूरसागर में दीख पड़ती है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूर ने ही प्रथम बार वात्सल्य भक्ति रस का उद्‌घाटन किया है। इस प्रकार सूर उच्चकोटि के भक्त थे और उनकी भक्ति भावना में स्वाभाविकता विद्यमान है।

यद्यपि सूरसागर में अन्य अवतारों की भी कथा कही गई है, पर प्रमुखता कृष्ण को ही प्राप्त है और सूरसगर का दशम स्कन्ध अन्य सभी स्कन्धों को मिला कर भी उन सबसे बहुत अधिक विस्तृत है। सूर काव्य के नायक–नायिका कृष्ण और राधा ही हैं तथा विचारकां का भी यही कहना है। समस्त सूरसागर का अध्ययन करने पर कृष्ण का चरित्र हमारे सामने निम्नलिखित रूपों में आता है –

(1) अत्यन्त मुखर बालक के रूप में।

(2) चंचल किशोर के रूप में।

(3) किशोर प्रेमी के रूप में।

(4) क्रीड़ा कौतुक प्रिय सखा के रूप में।

(5) तरुण नायक के रूप में।

(6) अति प्राकृत अलौकिक सत्ता के रूप में, जो अनेक आश्चर्यमय लीलाएं करते हैं, जो भक्तों की रक्षा करते हैं।

(7) गुरु गम्भीर महाराज के रूप में।

इस प्रकार सूर ने कृष्ण का चरित्र विविध दृष्टियों से अंकित किया है और इसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है। साथ ही सूर की राधा भी हिन्दी साहित्य को प्राप्त एक अमूल्य देन है और यह चंडीदास की राधा की तरह न तो परकीया ही है और न विद्यापति की राधा की भाँति प्रेयसी ही है। साथ ही वह एक साधारण या असाधारण गोपी भी नहीं है, बल्कि कृष्ण की पत्नी सदृश ही है और उसे सूर की अपनी देन ही समझना चाहिये।

सामान्यतः सूर के पदों को निम्नाँकित पाँच भागों में विभाजित किया जाता है– 1. विनय के पद, 2. बाल लीला के पद, 3. सौन्दर्य वर्णन सम्बन्धी पद, 4. मुरली विषयक पद और 5. भ्रमर गीत। इनमें से विनय के पद तो भक्ति भावना से सम्बन्धित हैं तथा अन्तिम तीन तो कृष्ण लीला से ही सम्बन्धित हैं। यों बाल लीला के पद भी कृष्णचरित से ही सम्बन्धित माने जायेंगे पर सूर के बाल वर्णन का स्वतन्त्र महत्व भी है। सच तो यह है कि सूर का बाल वर्णन विश्व साहित्य में अद्वितीय कहा जाता है और लाला भगवानदीन का यहाँ तक कहना है "सूरदास जी के साहित्य में यह अंश ऐसा है कि इसको निकाल देने से सूर का व्यक्तित्व लोप हो जाता है।....बालचरित ही इनकी कविता की आत्मा है, इसके बिना इनका साहित्य आत्माविहीन शरीर के ही समान है।"

यहाँ यह स्मरणीय है कि अधिकांश समीक्षक वात्सल्य को स्वतन्त्र रस नहीं मानते और वह उनकी गणना शृंगार रस के ही अन्तर्गत कर लेते हैं, लेकिन सूर के बाल वर्णन का अनुशीलन करने के पश्चात् तो वात्सल्य को स्वतन्त्र रस मानने में सन्देह नहीं रह जाता। उदाहरणार्थ हम देखते हैं कि सूर के निम्नाँकित पद में वात्सल्य रस के समस्त तत्व विद्यमान हैं–

Scanned with CamScanner

बलि गइ बालरूप मुरारि।
पाइ पैंजनि रटति रुनझुन नचावति नंद-नारि।।
कबहुं हरि कौं लाइ अंगुरी चलन सिखवति ग्वारि।
कबहुं हृदय लगाइ हित करि लेति अंचलि डारि।।
कबहुं हरि कौ चितैं चूमति कबहुं गावति गारि।
कबहुं लै पाछे दुरावति ह्याँ नहीं बनवारि।।
कबहुं अंगभूषन बनावति, राइ-लोन उतारि।
सूर सूर नर सबै मोहे निरखि यह अनुहारि।।

सूर ने कृष्ण की बाल सुलभ क्रीड़ाओं का वर्णन करते समय बालकृष्ण की अत्यन्त साधारण चेष्टायें भी अंकित की हैं और मातृ हृदय की औत्सुक्या का भी स्वाभाविक वर्णन किया है तथा इसमें कोई संदेह नहीं कि सूर मातृ हृदय का चित्रण करने में पूर्ण सफल रहे और डॉ० मुन्शीराम शर्मा के शब्दों में "बाल्यावस्था की आन्तरिक मनोदशाओं के सफल चित्रण के साथ उन्होंने मातृ हृदय की बड़ी गहरी अनुभूति प्रकट की है।

यद्यपि प्रसंगानुसार सूरसागर में नवों रसों के उदाहरण भी मिलते हैं लेकिन सूर ने शृंगार और वात्सल्य रस की ही प्रधानरूप से अभिव्यक्ति की है। आचार्य शुक्ल ने कहा भी है "वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया, उतना किसी अन्य कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना-कोना वे झाँक आए। उक्त दोनों के प्रवर्त्तक रति भाव के भीतर की जितनी, मानसिक वृत्तियों और दशाओं का अनुभव प्रत्यक्षीकरण सूर कर सके, उतना का और कोई नहीं। हिन्दी-साहित्य में शृंगार का रस-राजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया है तो सूर ने।"

सूर सागर संयोग शृंगार का अत्यन्त व्यापक वर्णन दृष्टिगोचर होता है तथा कवि ने शृंगार सम्बन्धी जितने भी क्रीड़ा विधान हो सकते थे, उन सभी का वर्णन किया है और संयोग शृंगार की भाँति विप्रलंभ शृंगार में भी व्यापकता एवं गम्भीरता दृष्टिगोचर होती है तथा कवि ने विरह की सभी अन्तर्दशाओं का चित्रण भी किया है। भ्रमरगीत पदावली में तो विरह सागर उमड़ सा उठा है तथा उसमें कल्पना एवं भावुकता का सहज सामंजस्य दृष्टगोचर होता है।

इस प्रकार सूर की रस व्यंजना अनुपम है और वे रूप चित्रण तथा प्रकृति वर्णन में सफल रहे हैं। डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा के शब्दों में "सूरसागर में श्रीकृण के शैशव से लेकर किशोर अवस्था तक के असंख्य रूप चित्र हैं जिनमें कवि की भावना, कल्पना, कला कुशलता और शैली की चमत्कारिता एक साथ व्यक्त हुई है।"

इस प्रकार सूर ने प्रकृति चित्रण की विविध प्रणालियों को अपनाते हुए प्राकृतिक दृश्यों का भी मनोमुग्धकारी वर्णन किया है और जैसा डॉ० मुन्शीराम शर्मा का कहना है सूर ने प्रकृति का वर्णन निम्नांकित रूपों में किया है-

(1) प्रकृति का विषयात्मक चित्रण।
(2) प्रकृति का अलंकृत चित्रण।
(3) कोमल और भयंकर रूप में चित्रण।
(4) प्रकृति मानव क्रिया कलाप की पृष्ठभमि।

सूर काव्य के कलापक्ष पर विचार करते समय सर्वप्रथम हमारा ध्यान इस ओर जाता है

Scanned with CamScanner

कि सम्पूर्ण सूर काव्य गीतिकाव्य के ही अन्तर्गत आएगा। यों तो आचार्य चन्द्रबली पाण्डे सूरसागर को लीला प्रबन्ध काव्य या भावप्रबन्ध काव्य मानते हैं परन्तु उसे प्रबन्धकाव्य न मानकर मुक्तक-काव्य मानना ही उचित होगा और उसे गीतिकाव्य कहना ही युक्तिसंगत है। साथ ही पिंगल की दृष्टि से विचार करने पर सूरसागर में चौपाई, दोहा, रौला, चन्द्रभानु, कुण्डल, सुखदा, राधिका, उपमान, हरि, तोमर, शोभन, रूपमाला, गीति, विष्णुपद, सरसी, हरिपद, सार, लावनी, बीर, घनाक्षरी और सवैया आदि छन्द भी दृष्टिगोचर होते हैं। साथ ही सूरकाव्य में राग-रागनियों का सुन्दर समावेश हुआ है और शिखरचन्द्र जैन के शब्दों में "यदि काव्य और संगीत का सच्चा समन्वय कोई प्रकृत रूप से कर सकता है तो वह सूर ही है।"

वस्तुतः सूरदास ही प्रथम कवि हैं जिन्होंने ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप प्रदान किया और हरिऔध जी के कथनानुसार "उनके हाथों से यह भाषा जैसी मंजी जितनी मनोहर बनी और जिस सरसता को उसने प्राप्त किया वह हिन्दी संसार के लिए गौरव की वस्तु है।" सूर की शब्द योजना सराहनीय है और उनकी भाषा सर्वत्र ही भावानुगामिनी, सरस, सुबोध एवं सशक्त है। साथ ही वह अपूर्व माधुर्यमयी भी है और उसमें माधुर्य एवं प्रसाद गुणों की अधिकता-सी है। कंस-वध, दावानल प्रसंग आदि कतिपय प्रसंगों में ही ओज गुण का समावेश है अन्यथा सर्वत्र ही माधुर्य और प्रसाद गुण की अधिकता है। सूर ने संस्कृत के तत्सम शब्दों को भी अपनाया है और तद्भव तथा ठेठ शब्दों के साथ-साथ विदेशी शब्दों को भी निस्संकोच ग्रहण किया है। साथ ही वह अलंकार व्यंजना में भी पूर्ण सफल रहे हैं और उनकी उक्तियों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, रूपकातिशयोक्ति, प्रतिस्तूपमा, अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति और विभावना आदि अलंकार दीख पड़ते हैं। इतना ही नहीं कवि ने मुहावरों, लोकोक्तियों का भी बहुत अधिक प्रयोग किया है तथा उनकी भाषा में लाक्षणिकता एवं ध्वन्यात्मकता भी दर्शनीय है।

इस प्रकार सूर काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष पर विचार करने के उपराँत हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सूरदास जी हिन्दी-साहित्य के अमर कवि हैं तथा चन्द्रबली पाण्डे ने उचित ही कहा है "सूर की कविता, कविता नहीं, हृदय की झंकार है।"

Scanned with CamScanner